आयुर्वेद की आचार्य परम्परा

प्राचीन काल में जब आयुर्वेद का प्रचार-प्रसार हुआ तो आयुर्वेद तीन सम्प्रदायों में विभाजित हुआ-

1. आत्रेय सम्प्रदायः- इस सम्प्रदाय में अग्निवेश आदि ने अपनी संहिताएं लिखी। इस सम्प्रदाय की संहिता कायचिकित्सा प्रधान हैं।

2. धान्वन्तर सम्प्रदायः- इस सम्प्रदाय में सुश्रुत आदि ने अपनी संहिताएं लिखी। इस सम्प्रदाय की संहिता में शल्यतन्त्र की प्रधानता देखी जाती है।

3. काश्यप सम्प्रदायः- इस सम्प्रदाय में काश्यप आदि ने अपनी संहिता लिखी। इस सम्प्रदाय की संहिता कौमारकृत्य प्रधान है। किन्तु पाठ्यक्रम विशेष में उपर्युक्त आत्रेय और धान्वन्तर सम्प्रदाय का विषय ही अपेक्षित है। इन संहिताओं से पूर्व भी ब्रह्मसंहिता, इन्द्रसंहिता तथा भास्करसंहिता के अस्तित्व का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु ये संहितायें सम्भवतः ग्रन्थरूप में निबद्ध नहीं थी। विषय के समस्त अंग जिसमें समाहित हों, उसे संहिता कहते हैं।

प्राचीन काल में आयुर्वेद की अनेक संहिताओं की रचना विभिन्न महर्षियों के द्वारा हुई। उन संहिताओं के अस्तित्व का ज्ञान परवर्ती ग्रन्थों में प्राप्त उद्धरणों के द्वारा होता है। आत्रेय और धान्वन्तर सम्प्रदाय के आचार्यों ने आयुर्वेद के समस्त विषयों का संकलन संहिता के रूप में किया है।

2.1 आचार्य आत्रेय की परम्परा

आत्रेय अत्रि के पुत्र तथा शिष्य दोनों थे। प्रथम गुरु परम्परा में महर्षि भगवान आत्रेय है। जिनके अन्य नाम पुनर्वसु आत्रेय, कृष्णात्रेय हैं। परन्तु चरकसंहिता में भिक्षु आत्रेय का नाम भी आया है। हिमालय प्रदेश में रोगों के नाश हेतु विचार के लिए जब गोष्ठी का आयोजन हुआ था। उसमें आत्रेय और भिक्षु आत्रेय दोनों के अलग-अलग नाम आये हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि भिक्षु आत्रेय अन्य महर्षि थे। भारद्वाज ने इन्द्र द्वारा प्राप्त समस्त आयुर्वेद का जिन ऋषियों को उपदेश दिया उनमें आत्रेय प्रमुख थे। आत्रेय ने अपने इस ज्ञान को अपने छः शिष्यों शिष्यों को दिया था। उनके शिष्यों के नाम इस प्रकार है- अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि। इन ऋषियों ने जो ज्ञान प्राप्त किया. उसे उन्होंने अपनी अलग-अलग संहिताओं में निबद्ध किया। किन्तु अग्निवेश संहिता ही अधिक प्रसिद्धि को प्राप्त कर सकी, उसी संहिता को बाद में चरक और दृढ़बल ने ग्रहण किया और परिष्कृत और परिवर्धित करके उसे संकलित किया।

वह संहिता चरकसंहिता के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुई। आज भी यह आयुर्वेद की प्रधान संहिता मानी जाती हैं।आयुर्वेद का लौकिक उपदेश आत्रेय के काल में ही प्रारम्भ हुए थे। इस समय का जन-जीवन रोगग्रस्त था और उपचार की कोई व्यवस्था नहीं थी। रोगग्रस्त जीवन से मुक्ति पाने के लिए आयुर्वेद का विस्तार करके त्रिस्कन्ध संहिताओं का निर्माण किया गया वे त्रिस्कन्ध निम्नवत् हैं-

1. हेतुस्कन्ध 2. लिङ्गस्कन्ध 3. औषधस्कन्ध

हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्।

त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः।।

च.सू. 1/24

इनके शिष्य भेल ने भेलसंहिता का निर्माण किया। वह आजकल खण्डित अवस्था में प्राप्त है तथा उसके बहुत से अंश नष्ट या लुप्त हो गये हैं। जतूकर्ण, पराशर और क्षारपाणि ने भी संहिताओं की रचना तो की थी, परन्तु वे प्राप्य नहीं हैं। यहाँ-वहाँ टीकाओं में उनके उद्धरण प्राप्त होते हैं। हारीत ने जिस हारीतसंहिता की रचना की वह प्राप्त नहीं होती है। जो हारीत संहिता प्राप्त होती है, उसकी भाषा शैली से वह ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी परवर्ती विद्वान् की लिखी आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसंहिता की रचना अग्निवेश ने की और अग्निवेश के गुरु ही महर्षि आत्रेय हैं। अपने गुरु के उपदेशानुसार ही इन्होंने ग्रन्थ की रचना की। इनके विषय में एक बात यह भी है कि जब भी महर्षियों की गोष्ठी अथवा सम्मेलन होते थे, उसकी अध्यक्षता महर्षि पुनर्वसु आत्रेय ने की। इन सम्मेलनों में प्रस्तुत विचारों को सुनकर महर्षि आत्रेय ने जो निर्णय भी दिया। वह सर्वमान्य रहा।

अग्निवेश

पुनर्वसु आत्रेय के शिष्यों में सर्वप्रथम अग्निवेश का नाम आता है। जिन्होंने आत्रेय के उपदेशों को 'चरकसंहिता' इस तन्त्र के रूप में निबद्ध किया। इसी कारण इस ग्रन्थ का मुख्य अथवा प्रारम्भिक नाम 'अग्निवेशतन्त्र' है। इनकी बुद्धि अत्यन्त विस्तृत और कुशाग्र थी, इसी कारण अन्य शिष्यों, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत एवं क्षारपाणि में सबसे पहले अपनी संहिता की रचना करके गुरुदेव पुनर्वसु आत्रेय को सुनाया। जिसे सुनकर महर्षि आत्रेय अत्यन्त प्रसन्न हुए। यहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि गुरुवर आत्रेय ने महर्षि अग्निवेश को कोई विशेष शिक्षा दी थी। जिस कारण उन्हें प्रथम संहिताकर्ता का स्थान प्राप्त हुआ। यह तो महर्षि अग्निवेश की विशिष्ट प्रतिभा के कारण हो पाया। इसके बाद दूसरे महर्षियों ने संहिता रचना की और गुरु को अपने-अपने संहिता को सुनाया। इन तन्त्रों के निर्माण के बाद चारों ओर साधु-साधु यह साधुवाद होने लगा। महर्षि चरक ने तो इस प्रकार कहा है-

शिवो वायुर्ववो सर्वा भाभिरुन्मीलिता दिशः।

निपेतुः सजलाश्चैव दिव्याः कुसुमवृष्टयः।।

च.सू. 01/38

अर्थात् कल्याणकर वायु बहने लगी, सारी दिशाएँ दैदीप्यमान हो गई तथा जल के साथ दिव्यपुष्पवृष्टि होने लगी।

तानि चानुमतान्येषां तन्त्राणि परमर्षिभिः।

भवाय भूतसङ्घानां प्रतिष्ठां भुवि लेभिरे।।

च.सू. 1/40

इन महर्षियों द्वारा रचित तन्त्रों को सभी श्रेष्ठ महर्षियों ने माना और विश्व में प्राणिसमूह की स्थिति के लिए तत्र प्रतिष्ठा को प्राप्त किया। इसका भाव यह है कि ये तन्त्र जनसमुदाय के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए, परन्तु आज वे सभी विलुप्त हो गये। उनमें अग्निवेशतन्त्र ही केवल प्राप्त है, वह चरकसंहिता इस नाम जाना जाता है। चरकसंहिता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में अग्निवेश का नाम आया है-

'इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते;

2.2 आचार्य धन्वन्तरि की परम्परा

भारतवर्ष ने अपनी गणना सर्वश्रेष्ठ और प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से विश्व के देशों में करवा रखी है। इस देश के नामकरण के संस्कार में धर्मशास्त्रों में विशेष विधियों का वर्णन है। चरक संहिता, शारीरस्थान में बालक का नाम नक्षत्र या देवता के नाम पर या प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित तीन पीढ़ी के पूर्वजों के नाम के अक्षर से युक्त छोय सा दो या चार अक्षर वाला रखना चाहिए, ऐसा निर्देश दिया गया है।इ इसी से किसी विशेष गुण आधार पर अथवा व्यक्ति के किसी विशेष गुण के आधार पर नाम रखने की प्रथा का प्रचलन हो गया। धन्वन्तरि नाम भी विशेष गुण बोधक प्रतीत होता है। धन्वन्तरि शब्द की व्युत्पत्ति सुश्रुत के टीकाकार डल्हण ने इस प्रकार की है-

'धनुः शल्यशास्त्रं तस्य अन्तं पारम् इयति गच्छतीति धन्वन्तरिः"। (सु.सू.1/3)

अर्थात् शल्यशास्त्र के पारंगत विद्वान् को धन्वन्तरि कहते हैं।

धन्वन्तरि का नाम वैद्यकशास्त्र के जन्मदाता के रूप में प्रचलित हैं। ये चिकित्सा-परम्परा के आद्यप्रवर्तक है। शल्य एवं चिकित्साशास्त्र के आचार्य तथा उपदेशक के रूप में जिस धन्वन्तरि का वर्णन है उनका पूरा नाम 'दिवोदास काशिराज धन्वन्तरि है। शल्य-प्रधान चिकित्सा का उपदेश इन्होंने ही सुश्रुत आदि आचार्यों को दिया। इन्हीं के उपदेशों को संकलित करके

'सुश्रुतसंहिता' की रचना की गई है तथा इनके सहपाठी औपधेनव आदि ने अलग-अलग सहिताएँ बनाई। अतः दिवोदास के पूर्वजों में इनके प्रपितामह का नाम भी धन्वन्तरि था। अपने पूर्वजों के नाम पर नाम रखने की परम्परा भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर देखी जाती है। कई स्थानों पर तो गोत्र के नाम पर, गुणवाचक पदों के नाम पर और उपाधिवाचक पदों के नाम भी देखे जाते हैं।धन्वन्तरि शब्द भी उपाधिवाचक प्रतीत होता है। धन्वन्तरि नामक तीन आचार्यों का वर्णन इतिहास में दृष्टिगोचर होता है, उन तीनों का वर्णन निम्नवत् है-

धन्वन्तरि (प्रथम):-काश्यपसंहिता में यह उल्लिखित है कि काल के द्वारा ग्रसित देवता और असुर ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने इनको अमृत के बारे में बताया। इसी के बाद देवताओं और असुरों ने मिलकर समुद्रमन्थन किया औरअ अमृतको प्राप्त किया। इसके बाद इसके प्रथम सेवन पर प्रश्न उठा। इसके बाद यह निष्कर्ष निकला कि देवता ही इसका प्रथम सेवन करेंगे। तब देवताओं ने इसका सेवन किया और अजर-अमर हो गये। देवता अमृतपान करने के बाद काल को पराजित करने में समर्थ हुए। पुराणों में भी धन्वन्तरि भगवान् विष्णु के अंश माने जाते हैं, जो समुद्रमन्थन से अमृतकलश लिए हुए प्रकट हुए। धन्वन्तरि की गणना समुद्र से प्राप्त चौदह रत्नों में की जाती है-

श्री, मणि, रम्भा, वारुणी, अमिय, शंख, गजराज।

कल्पदुम, शशि, धेनु, धनु, धन्वन्तरि, विष, वाजि।।

श्री नन्दूलाल देने वर्तमान समय के कैस्पियन सागर को ही क्षीर सागर माना है। इसी स्थान पर मनुष्य देवता और असुर निवास करते थे। इसके चारों ओरप पर्वतथे उन पर्वतों पर विभिन्न प्रकार की औषधियाँ थी।देवताओं और असुरों ने जब समुद्रमन्थन का निश्चय किया तो वासुकि (नाग) को रज्जु और मन्दराचल को मथानी बनाया। इसी के बाद धर्मात्मा धन्वन्तरि आयुर्वेदमय दण्ड और कमण्डल धारण किए हुए प्रकट हुए। वह धन्वन्तरि थे। यह अत्यन्त प्रसिद्ध दृष्यन्त है। महाभारत में भी जो समुद्रमन्थन का वर्णन प्राप्त होता है। उसमें धन्वन्तरि काउ उल्लेखप्राप्त होता है। हरिवंशपुराण में भी समुद्रमन्थन से धन्वन्तरि के प्रादुर्भाव का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि धन्वन्तरि (प्रथम) का जन्म अमृतोत्पत्ति के समय हुआ और इनका काल समुद्रमन्थन काल है। धन्वन्तरि के गुरु और उनके ग्रन्थ-

गुरु:-चिकित्सा का ज्ञान धन्वन्तरि को भास्कर से प्राप्त हुआ। मत्स्यपुराण में कहा है कि समुद्रमन्थन के समय प्राप्त रत्नों में से भास्कर ने धन्वन्तरि को ग्रहण किया- गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः।

धन्वन्तरिञ्च जग्राह लोकोरोगप्रवर्तकम्।।

मत्स्य पु. 251/4

उपर्युक्त कथन से तो भास्कर धन्वन्तरि के गुरु ही प्रतीत होते हैं। धन्वन्तरि के लिए आदिदेव, अमरवर, अमृतयोनि, अब्ज आदि विशेषों का प्रयोग सुश्रुतसंहिता आदि ग्रन्थों में मिलता है।

ग्रन्थः-भास्करसंहिता धन्वन्तरि के गुरु भास्कर ने लिखी। इसी संहिता का अध्ययन करके भास्कर के शिष्यों ने अपनी-अपनी संहिताओं की रचना की। ब्रह्मवैवर्त में लिखा है कि धन्वन्तरि ने 'चिकित्सातत्त्वविज्ञानतन्त्र' की रचना की-

चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम्।

धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमेति।।

(ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मखण्ड अ.-16)

धन्वन्तरि विष्णु के अंश माने जाते हैं। अत: भारतीय चिकित्सालय में इनकी चतुर्भुज मूर्ति ही विशेष रूप से देखी जाती है। यह पूर्णरूपेण स्पष्ट उल्लेख प्राप्त न होने के कारण मनुष्य रूप में दो भुजाओं वाली मूर्ति की कल्पना भी की गई है।

धन्वन्तरि (द्वितीय)

धन्वन्तरि द्वितीय से तात्पर्य उस धन्वन्तरि से है, जिन्होंने काशी के चन्द्रवंशी राजकुल में सुनहोत्र वंश में चौथी पाँचवी पीढ़ी में जन्म लिया। हरिवंश, ब्रह्माण्ड पुराणादि अन्य पुराणों के अनुसार उनका वंश निम्नवत् है-

तालिका-

यह वंशावलि प्राप्त तो है परन्तु इसमें भी मतैक्य नहीं है। किसी ने दीर्घतपा का पुत्र धन्वन्तरि, तो किसी ने दीर्घतपा का पुत्र धन्व और उसका पुत्र धन्वन्तरि माना है, परन्तु दूसरी वंशावली के अनुसार प्रकाशिराट के पुत्र धन्वन्तरि माने हैं। दीर्घतपा के पुत्र धन्वन्तरि को भागवतपुराण और गरुडपुराण में आयुर्वेद का प्रवर्तक माना है।

समय:- रामायण के उत्तरकाण्ड में उल्लिखित है कि दशरथ पुत्र राम त्रेता-द्वापर के संधि काल में हुए। प्रतर्दन उनका मित्र था, जो काशीपति था। राम के राज्याभिषेक में प्रतर्दन उपस्थित था (रामा.उ. 38/15)। त्रेता और द्वापर का संधि काल 300 वर्ष का था। अत: प्रतर्दन के चार पीढ़ी ऊपर धन्वन्तरि द्वितीय का समय था। धन्वन्तरि द्वितीय का समय विक्रम संवत् से लगभग 5044 वर्ष पूर्व था। हरिवंशपुराण में धन्वन्तरि द्वितीय के लिए विद्वान् विशेषण का प्रयोग किया गया है। भागवतपुराण में इन्हें सभी रोगों को नष्ट करने वाला और आयुर्वेद प्रवर्तक कहा गया है। इससे यह तो ज्ञात हो जाता है कि ये चिकित्सा में निपुण, सिद्धहस्त वैद्य

अनेक विद्याओं को जानने वाले हैं। शल्यचिकित्सा में पारङ्गत विद्वान् होने के कारण इनका नाम धन्वन्तरि रखा गया हो। धन्वन्तरि (तृतीय) काशिराज दिवोदास आयुर्वेद में शल्यप्रधान चिकित्सा के पितारूप में धन्वन्तरि नाम लिया जाता है। धान्वन्तर सम्प्रदाय को जो प्रतिष्ठा प्राप्त है। वह इनकी कार्यकुशलता का ही परिणाम है। धन्वन्तरि चिकित्सा के जगत् में शल्यकर्म के विशेषज्ञ आचार्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। वाराणसी नगर के संस्थापक दिवोदास थे। आयुर्वेद की परम्परा काशिराज के कुल में अक्षुण्ण रही है। प्रत्येक काल में आयुर्वेद का प्रचार और प्रसार किया जाता रहा है। इस परम्परा को दिवोदास ने प्रसिद्ध बनाया। इन्होंने आयुर्वेद की शिक्षा-दीक्षा विद्यापीठ के रूप में देना आरम्भ किया। दूर-दूर से शिष्य इनके यहाँ विद्याध्ययन के लिए आते थे। इनके शिष्यों में सुश्रुत के अलावा औपधेनेव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य और गोपुररक्षित का नाम आता है-

'अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृत्तमाश्रमस्थं
काशिराजदिवोदासंधन्वन्तरिमौपधेनेववतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्यगोपुररक्षितसुश्रुतप्रभृतयः ऊचुः। सु.सू. 1/3

यहाँ पर आए प्रभृति शब्द से डल्हण ने निमि, कांकायन, गार्म्य और गालव को लिया है। वाराणसी के आसपास जो नाम प्रचलित थे। उनसे भिन्न इन शिष्यों के नाम हैं। इस प्रकार यह हो सकता है कि ये शिष्य दूर देशों से पढ़ने के लिए आए होंगे। धन्वन्तरि को अलग-अलग नामों से पुकारा गया है जैसे-

सुश्रुतसंहिता (चि. 2/3) में धर्माचरणयुक्त वाग्विशारद

निदानस्थान (1/3) में राजर्षि

कल्पस्थान (4/3) में महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद

उत्तरतन्त्र (18/3) में तपोदृष्टि उदान तथा मुनि।

इन विशेषणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि धन्वन्तरि, परमतपस्वी, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा और उदार मन वाले व्यक्ति थे। सुश्रुत उत्तर तन्त्र में इन्हे अष्टाङ्ग आयुर्वेद का विद्वान्, महाओजस्वी, शास्त्रों के अर्थ से सम्बन्धित सन्देह को दूर करने वाले तथा सूक्ष्म शास्त्रों के ज्ञाता हैं-

अष्टाङ्गवेदविद्वांसं दिवोदासं महौजसम्।

छिन्नशास्त्रार्थसन्देहं सूक्ष्मागाधगमोदधिम्।।

इन्होंने अपना स्वयं का परिचय इस प्रकार प्रकार दिया है कि ये पहले देववैद्य थे तथा इन्होंने देवताओं की जरा, रुजा और मृत्यु को दूर करके अजर,अमर और नीरोग किया।शल्य प्रधान आयुर्वेद के लिए ये मानव रूप में अवतरित हुए-

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।

शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्।। (सु.सू. 1/17/44)

समय:-धन्वन्तरि के मत को चरकसंहिता में अनेक स्थानों पर उद्धृत किया गया है। शल्यज्ञ धान्वन्तर सम्प्रदाय के लोगों का शल्य चिकित्सा पर अधिकार बताया गया है। परन्तु आत्रेय का सुश्रुत संहिता में कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि दिवोदास, आत्रेय एवं अग्निवेश के कुछ मजूमदार ने धन्वन्तरि का समय 1600 ई.पू. और भीमरथ के पुत्र दिवोदास का समय पूर्व के थे। अग्निवेश का समय 1000 ई.पू. माना जाता है तो अक्षयकुमार समय 1500 ई० पू० माना है। दिवोदास का समय 1000 से 1500 ई.पू. माना जाना उचित है।

गुरु:- "इन्द्रादहं, मया त्विह प्रदेयमार्थिभ्यः प्रजाहितहेतो" अर्थात् मैंने इन्द्र से शिक्षा ग्रहण की और मैं प्रजा के कल्याण के लिए शिष्यों को इसे दूंगा ऐसा इन्होंने स्वयं ही कहा है। (सू.सू. 1/20)

इनके गुरु भरद्वाज थे, ऐसा हरिवंशपुराण में कहा है। उन्हीं से इन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया-

आयुर्वेदं भारद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।

तमष्टधा पुनर्व्यस्यं शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्।।

(हरिवंश पर्व 1/अ. 29)

ग्रन्थः-इनके द्वारा रचित ग्रन्थ चिकित्सादर्शन और चिकित्साकौमुदी हैं। इनका उल्लेख ब्रह्मवैवर्त खण्ड अ. 16 में प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त ग्रन्थों का नाम भी पूना की हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची सं. 360 में प्राप्त है, जो इस प्रकार हैं-

1. योगचिन्तामणि

2. सन्निपातकलिका

3. धातुकल्प

4. अजीर्णामृतमञ्जरी

5. धन्वन्तरिनिघण्टु

6. रोगनिदान

7. वैद्यचिन्तामणि

8. वैद्यभास्करोदय

9. चिकित्सासंग्रह आदि।

अत: धन्वन्तरि का वर्णन महाभारत, हरिवंशपुराण, वायुपुराण, काठकसंहिता, कौषितकी ब्राह्मण, कौषितकी उपनिषद् आदि में होने से ये उपनिषत्कालीन प्रतीत होते हैं। रामायण और महाभारत के युद्धों के समय भी शल्य चिकित्सा का वर्णन प्राप्त होता है। बाण चुभने पर शल्यकर्म किया जाता है। अत: यह अति प्राचीनकाल से चला आ रहा है। अथर्ववेद में भी भग्नसन्धान के अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं।पुराणों में दिवोदास धन्वन्तरि का वर्णन होने से इसकी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है।

Lecture by-

Dr. Ritu Mishra

SEM. 5th

Department of sanskrit

Shivaji college.